International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 25-02-2025, Accepted: 26-03-2025, Published: 10-04-2025
Volume 7, Issue 1, 2025, Page No. 31-35

समकालीन कविता में लोक–तत्व की उपस्थिति

कुमारी कंचन सिंह[1], डॉ. सुशांत कुमार[2]
[1] शोधार्थी, बाबासाहेब भीमराव अम्बेदकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार, भारत
[2] सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेदकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार, भारत

सारांश
समकालीन कवितावर्तमान समय की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के विभिन्न पहलुओं को उजागर करती है। समकालीन कविता समाज को आईना दिखाने का काम करती है। इसके शुरुवात के संदर्भ में विद्वानों में मतैक्य है। समकालीन कविता दुरूखद–सुखद, नैतिक–अनैतिक, विरोध–समर्थन के साथ विद्यमान है। यह अतीत की अनुभूतियों के साथ वर्तमान की समस्याओं से अवगत कराती है और संभावित समाधान का मार्ग भी प्रसस्त करती है। समकालीन कविता की प्रासंगिकता इसलिए है कि यह पाठक वर्ग को सोचने, समझने और बदलने के लिए मजबूर करती है। समकालीन कविता भारत ही नहीं बल्कि वैश्विक पटल पर एक आन्दोलन के रूप में उभरकर सामने आई है। यह सांस्कृतिक विविधता और वैश्विक समस्याओं को दर्शाती है। यह कविता छंद के बंद से मुक्त यानी पारंपरिक छंदों से अलग मुक्तक छंद और गद्य शैली में लिखी जा रही है। इसमें स्वतंत्र शैली और नवाचार का समावेश होता है। इसमें नए–नए प्रतिकों एवं बिम्बों का प्रयोग किया जाता है। यह सामान्य बोलचाल की भाषा में लिखी जाती है जिसको सामान्य जनमानस आसानी से पढ़ और समझ सके। यह कविता वर्तमानकालीन परिस्थिति जैसे– पर्यावरण संकट, गरीबी, जनसंख्या वृद्धि, पलायन, बेरोजगारी, शहरीकरण, औद्योगिकीकरण, सामाजिक असमानता, विस्थापन, युद्ध और मानवीय पीड़ा आदि को केन्द्र में रखकर लिखी जा रही है। समकालीन समय में मनुष्य तकनीक, औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के कारण अपने अस्तित्त्व को लेकर शंकाओं से घिरा हुआ है जिसकी वेदना हमें समकालीन कविता में स्पष्ट दिखाई देती है। समकालीन कविता हिंदी के साथ–साथ अंग्रेजी, क्षेत्रीय भाषाओं, अंतर्राष्ट्रीय भाषाओं, लोक भाषाओं सहित मिश्रित भाषाओं में लिखी जा रही है, जो युवाओं के बीच काफी लोकप्रिय हो रही है। समकालीन कविताएँ ग्रामीण जन–जीवन, संस्कृति और लोक संघर्षों को अभिव्यक्त करती है।

मूल शब्दः समकालीनता, पर्यावरण संकट, गरीबी, जनसंख्या वृद्धि, पलायन, बेरोजगारी, शहरीकरण, औद्योगिकीकरण, सामाजिक असमानता, विस्थापन, मानवीय पीड़ा, लोक तत्त्व, लोक संस्कृति,तकनीक, गाँव, सड़क, खेत

भूमिका

लोक–तत्व वह सामाजिक, सांस्कृतिक और भौतिक तत्व होते हैं, जो साधारण जन जीवन से जुड़े होते हैं। सुमधुर, कर्णप्रिय शब्द लोक–तत्व में मौजूद होता है। इसमें सहजता, सरलता, समरसता, मौलिकता और यथार्थ का संचार होता है जो लोक चित्त को आह्लादित कर देता है। लोक में उपस्थित तत्व क्लिष्ट नहीं होते हैं। यथार्थ से जुड़े होने के कारण इसमें कोई बनावटीपन नहीं होता है। इसका संबंध सामान्य जनमानस की रहन–सहन, खान–पान, वेश–भूषा, पहनावा–ओढ़ावा आदि से होता है। यह प्रत्येक ग्रामीण समुदाय की विशेषताओं को प्रकट करती है। यह पारंपरिक ज्ञान, विश्वास और सांस्कृतिक धरोहर को बनाए और बचाए रखने में तथा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तानांतरित करने में मदद करती है। यह किसी भी भौगोलिक क्षेत्र के समुदाय की पहचान करने में मदद करती है। भारतीय साहित्य में सामाजिक परंपराएं, त्योंहार, परिधान, आभूषण, लोक कथाएं, लोक कला, लोक नृत्य, लोकगीत, लोक गाथाएं, लोकोक्ति और मुहावरे आदि में प्रयुक्त होने वाले तत्त्व लोक–तत्व होते हैं। लोक–तत्वों का लोक साहित्य पर गहरा प्रभाव होता है।

मुख्य भागरूसमकालीन कविता में लोक–तत्व के छीटे दिखाई देते है। जो कविता को सुगम, सरस, सुमधुर और सारगर्भित बनाती है। लोक–तत्व में हमारे लोक–जीवन की रस छुपी रहती है। लोक–तत्व के माध्यम से ही हम लोक–जीवन में व्याप्त हर्ष–विषाद, दुःख–सुख, संयोग–वियोग आदि का पता लगाते है। लोक–तत्व, लोक–जीवन की मौजूदगी का आभास दिलाती है। समकालीन कविता में प्रयुक्त होने वाले लोक–तत्व में एक अलग प्रकार का अपनापन, मधुरता और समीपता दिखायी देती है। समकालीन कविता में लोक–तत्व की उपस्थिति चार चाँद लगा देती है। समकालीन कविता में लोक–तत्व की उपस्थिति ही हमें आभास कराती है कि आज भी हम लोक से जुड़े हुए हैं। हम लाख आधुनिकता की तरफ अग्रसर हो रहे हैं लेकिन रस लोक में हीं ढूँढ रहे हैं। जिस प्रकार स्त्री की गोद ललना के बिना अधूरी लगती है ठीक उसी प्रकार समकालीन कविता लोक–तत्व की उपस्थिति के बिना अधूरी है। लोक कभी मरता नहीं है। अनेक भाषा और साहित्य में उसकी अदायगी अलग–अलग होती है। डॉ सत्येन्द्र लोक–तत्त्व के सन्दर्भ में कहते हैं कि "'लोक' मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्त्व मिलते हैं वे 'लोक–तत्त्व' कहलाते हैं।"[1]

कविता का उद्भव स्थल लोक ही होता है, वहीं से जन्म लेकर कविताएं पल्लवित–पुष्पित होती है और लोगों का मार्गदर्शन भी करती है।इस आधुनिकता के बिच समकालीन कवि लोक–तत्व के माध्यम से समाज की लोक धरोहरों और सांस्कृतिक परंपराओं के संरक्षण का सफल प्रयास भी कर रहे हैं। इन कवियों की कविताएँ इस बात को प्रमाणित करती है कि आधुनिकता के बावजूद लोकजीवन की जड़े कितनी गहरी है कि वे आज भी प्रासंगिक है। इन कवियों में छूटते हुए चीजों के प्रति मोह और प्राप्त होते हुए चीजों के प्रति आसक्ति दिखाई देती है।

लोक–तत्व की प्रधानता प्राचीन समय से ही हमारे आदि कवियों में देखने को मिलती है। यह कभी प्रधान रूप में दिखाई देती है तो कभी गौंण रूप में। लोक–तत्व की उपस्थिति हमें हर काल की कविताओं में दिखाई देती है। लोकवृत्त की जो रस धारा है वह हमारे आदि कवियों से निरंतर चली आ रही है। हमारे आदि कवि उसमें लगातार पुष्ट होते चले आए हैं। समकालीन समय में जैसा हो रहा होता है, वैसा ही एक कवि सोचता है और लिखता भी है। आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल के

छायावादी कवि भी इससे अछूते नहीं हैं। प्रारंभ से ही कवियों ने लोक–जीवन पर कविताएं लिखी हैं जिसमें लोक–तत्व की प्रधानता रही है। वाल्मीकि, सरहपा, विद्यापति, कबीरदास, सूरदास, तुलसीदास, बिहारी आदि की रचनाओं में लोक–तत्व की उपस्थिति रही है। परंतु उसकी जो प्रवृत्ति है परंपरागत निरंतरता के साथ प्रवाहित होती रही है और अपने आप को समृद्ध करती हुई समकालीन हिंदी कविता तक आती है। इक्कीसवीं सदी के कवियों में केदारनाथ सिंह, चंद्रकांत देवताले, अरूण कमल, अष्टभुजा शुक्ल, अनामिका, केशव तिवारी, महेश चंद्र पुनेठा, मनोज कुमार झा और राकेश रंजन आदि का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। उपरोक्त कवियों के काव्य में लोक–तत्व बहुत प्रखरता और मुखरता के साथ देखने को मिलता है। ये कवि अपनी कविता के माध्यम से लोक–तत्व का संरक्षण कर समाज की सांस्कृतिक धरोहर और पारंपरिक जीवन शैली को जीवित रखने तथा पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है। आधुनिक हिंदी साहित्य की धारा 1980–90 के दशक से बदलने लगती है। वैश्वीकरण, उदारीकरण, निजीकरण और औधोगीकरण का दौर आया तब आधुनिकतावाद हावी हो गई और अपनी जो परंपराएं थीं उनको लोग आधुनिकता की आड में हे। समझने लगे और छोड़ने लगे। फिर भी समकालीन कवियों में लोकवृत की धारणा कहीं भी क्षुण्ण नहीं होने पाती है। वह अक्षुण्णता बनाए रखती है। वह लगातार अपने समय और साहित्य को समृद्ध करती हुई आगे बढ़ती है और हमारे जो प्रमुख कवि हैं उनके साहित्य में निरंतरता के साथ देखने को मिलती है।

समकालीन हिंदी कविता के अन्य कवियों की तरह अरुण कमल की कविताओं में श्रम की महत्ता असंदिग्ध है। इनकी कविता में सामाजिक,राजनीतिक और सांस्कृतिक मूल्यों की अभिव्यक्ति दिखाई देती है। खेतिहर मजदूर और शहरी क्षेत्र में कार्यरत मजदूरों का चिंतन भी है। कवि इक्कीसवीं सदी में तेजी से गांव से शहर की ओर जीविकोपार्जन के लिए हो रहे पलायन और विस्थापन की बात कर रहे हैं। शहर में आदमी भीड़ में भी कैसे अकेला महसूस करता है उसी को कवि इस कविता में जिक्र किया है। गांव में कितना मिल्लत– जुल्लत था। वहां गए तो आज अपने को क्या पा रहे हैं, हम कैसे अपने को देख रहे हैं। प्राचीन गांवों की क्या संस्कृति थी? सब एक साथ कैसे उठते–बैठते, मिलते–जुलते, चलते–फिरते, सोते–जागते, खाते–पीते थे। यहां तो कोई जान–पहचान भी नहीं है। चौराहे पर एक तरफ खड़ा हूं चुपचाप। ना कोई पुछने वाला है ना कोई कहने वाला। गांवों में ऐसा नहीं होता है। लोक में कितना बदलाव आया है, लोक मानसिकता में कितना बदलाव आया है। आज हर आदमी अकेला है अपनी चिंता में लगा हुआ है। इसलिए आज तरह–तरह की बिमारियां, तरह–तरह के अवसाद उत्पन्न हो रहे हैं। पहले गांवों की ऐसी व्यवस्था थी कि पुरा गांव हीं संयुक्त होता था। सभी गांववासियों की एक ढंग की मानसिकता होती थी। सब एक दूसरे के सुख–दुःख में शरीक हो जाते थे, तनिक भी हिचकते नहीं थे। छोटा है, बड़ा है, धनी है, गरीब है, ऊंचा है, निचा है, छुआछूत का भी कोई भाव नहीं था। आज किसी को कुछ हो जाए तो पूछने वाला कोई नहीं है। आज जब वहीं लोग शहर में आ गए तो शहरीकरण का ऐसा दुष्प्रभाव चढ़ा हुआ है कि किसी को किसी से मतलब नहीं है। आदमी से आदमी का जुड़ाव दूर होता जा रहा है। जबकि आदमी की सबसे बड़ी पहचान है कि वह दूसरों के लिए जीता है।

"जब से इस शहर में आया यही शगल रहा रोज का
गाँव में था तो बधार जाता या नदी कीनारे
यहाँ कोई काम तो था नहीं सो रोज अपने डेरे से निकलता
और जाकर मुख्य चौराहे पर एक बगल खड़ा हो जाता
क्योंकि वही समय था जब सारी सड़कें भरी रहती कंठ तक
सन की भीगी रस्सी के गिट्ठे सा खोले न खुले ऐसा चौरस्ताद्य"[2]

जो हमारी पुरातन संस्कृति है वह आज इक्कीसवीं सदी में कह रही है कि हम कहीं विदेश से नहीँ आए हैं हम इसी देश के हैं लेकिन अब तुम्हारे अतिथि बनकर रह गए हैं। अतिथि होना मतलब हर जगह अपने को अकेला पाना। बिना बुलाए आ जानाद्य मैं पहले जमाने की बात सोचता हूं। जो हमारी संस्कृति थी हमारे यहाँ आम गोर दिए जाते थे। अब प्लास्टिक बंद फल मिल रहे हैं जिसकी कीमत आसमान छू रही है। और उसी को हम अपनी बड़प्पन समझ रहे है। हमारे समाज के गरीब लोगो को मौसमी फल भी नसीब नहीं हो रहा है। मैं उस काल में जीना चाहता हूँ लेकिन वैसा परिवेश नहीं मिल रहा है। इक्कीसवीं सदी के इस अकेलापन के युग ने सबको तहस नहस कर दिया है। आज जामुन के सारे वृक्ष कट गए। पर्यावरण प्रदूषण का एकमात्र कारण कवि इस कविता में दिखा रहा है। पहले जो बगीचा हुआ करते थे जिसमें आम, जामुन, कटहल फला करते थे। तरह–तरह के फल सबको प्राप्त होते थ। कच्चा आम लाकर गोर देते थे और समुह में बैठकर लोग खाते थे। वह आनंद आज दिखाई नहीं पड़ रहा है। आम मिल रहा है लेकिन उसमें अब वह स्वाद नहीं है। अब कारबाइट और रसायन से पकाए हुए फल बाज़ार में मिल रहे है। जो स्वास्थ्य के लिए नुकसानदायक है।

"मैं तुम्हारा अतिथि हूँ आज
तुम्हारे देश से आया
इस शहर की आँत में किराए की झोंपड़ी में बैठा
तुम्हारे हाथ की चाय सुड़कता
वे दिन गए जब तुम ग्रीष्म की दोपहर के स्तब्ध अँधेरे में
पके जामुन की गन्ध से श्लथ थी
वे दिन गए जब तुम कच्चे आम गोर देती चावल की कोठी में
और वे धीरे–धीरे पकते रहते"[3]

कवि शहर की ओर जाते हुए देख रहा है कि सड़क के किनारे कुछ बैल एक खेत के किनारे ठिठक गए हैं। उस खेत में ट्रैक्टर के चलने की आवाज को वह बहुत ध्यान से सुन रहा है। जैसे की संगीत हो। खेत जोतने के लिए पहले बैलों का उपयोग किया जाता था अब उसकी जगह ट्रैक्टर ने ले लिया है। अब वे उस नए यंत्र की आवाज को 'संगीत' की तरह सुन रहे हैं। जो इक्कीसवीं सदी की एक बहुत बड़ी विडंबना है। कवि कहता है कि यह मेरे युग का संगीत है यानी आधुनिक युग में मशीनीकरण, औधोगीकरण, तकनीकी बदलाव का यह प्रतीक है। कवि यह सुनता है तो ठिठक जाता है क्योंकि वह भी इस बदलाव से अछूता नहीं है। वह भी स्वीकार करता है कि अब लोक बदल रहा है। इस कविता में परंपरा और आधुनिकता के टकराव, समय के बदलाव, औधोगीकरण, तकनीकी प्रगति को दिखाता है। बैलों का ठिठकना मानो एक युग का ठहर जाना है और ट्रैक्टर का संगीत यानी नए युग के स्वागत का मुग्धकारी धुन।

बैल प्रकृति से जुड़ा हुआ था जब वह खेतों को जोतता था तब उसके गले की घंटियां टुनटुन बजती रहती थी जिसका संगीतमय धुन सबके ह्रदय को आह्लादित कर देता था। बैल लोक जीवन का प्रतीक है यह प्रकृति से जुड़ा हुआ है यह किसान के साथी है। भारतीय कृषक जीवन में बैल कृषि, परंपरा और लोक संस्कृति का अभिन्न हिस्सा रहे हैं।

तकनीक के आने से काम तो जल्दी हो रहा है लेकिन इसके दुष्प्रभाव भी है जैसे ग्लोबल वार्मिंग का बढ़ना, प्राकृतिक आपदाओं का आना, बेरोजगारी आदि। कवि खुद भी ठिठकता है। वह महसूस करता है कि यह बदलाव केवल बैलों के जीवन तक हीं

सीमित नहीं है यह उसके समय, उसके अस्तित्व, उसके पीढ़ी, उसकी परंपरा को भी छू रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यहां कवि भी एक युग के अंत और नए युग की शुरुआत को देख रहा हो। बैलों का ठिकाना यानी हमारी परंपरा का ठिठकना है। यह ठिठकना अंदर तक झकझोर देती है और सोचने पर मजबूर कर देती है। बैल प्रकृति के प्रतीक हैं जबकि ट्रैक्टर यंत्र का। विकास के दौर में हम धीरे–धीरे पारंपरिक जीवन को पीछे छोड़ते जा रहे हैं। धीमी रफ्तार का जीवन समाप्त हो रहा है और एक द्रुतगामी, यांत्रिक जीवन उसकी जगह ले रहा है। बैल लोक जीवन का आत्मा है और ट्रैक्टर आधुनिकता का प्रतीक। बैल जब ट्रैक्टर की संगीत सुनकर ठिठकते हैं तब यह एक नजारा नहीं है बल्कि लोक का धीरे–धीरे किनारे हो जाना है। बैलों का ट्रैक्टर की आवाज को संगीत मान लेना यह दर्शाता है कि लोक संस्कृति धीरे–धीरे इस आधुनिक परंपरा को अपना रही है। यह कविता यह दर्शा रहा है कि लोक समाप्त नहीं हो रहा है बल्कि रूपांतरित हो रहा है। बैलों की घंटियों का संगीत अब ट्रैक्टर के आवाज के संगीत में रूपांतरण हो गया है। साथ ही यह भी दिखा रहा है कि बदले समय में लोक कैसे ठिठकता है और वह भी आधुनिक समय में खुद को ढालने का प्रयत्न कर रहा है। बैल केवल वर्तमान को देखकर नहीं ठिठक रहे हैं बल्कि वह अपने अतीत की स्मृतियों में खो गए हैं।

"शहर की ओर जाते हुए
अपनी बीहड़ आज़ादी में
सड़क के किनारे
ठिठक गए थे बैल
बग़ल के खेत में ट्रैक्टर के चलने का
संगीत सुनते हुए"[4]

चंद्रकांत देवताले की एक कविता में तीन पीढ़ियों के बारे में दिखाया गया है। एक पीढ़ी यानी आजी जो लोक को जीतीं हैं। दूसरी पीढ़ी यानी मां जो लोक परंपराओं को सहेजने का प्रयास करतीं हैं और तीसरी पीढ़ी यानी पत्नी जो उन्हें ढूंढती फिरती हैं देवघर से कबाड़–कोठरी तक। देवघर से कबाड़–कोठरी तक यह संकेत करती है कि लोक परंपराएं अब घर के केंद्र में नहीं बल्कि हाशिए पर पड़ी चीजों की तरह देखी जा रही है। आज लोक संस्कृति धीरे–धीरे देवघर से कबाड़–कोठरी की ओर खिसकती जा रही है यानी लोक परंपराओं की पवित्रता केन्द्र से हाशिए पर खिसकती जा रही है। आधुनिक व्यक्ति ज्ञान को पुस्तकों और दस्तावेजों में ढूंढ रहा है जबकि पुराने जमाने में ज्ञान लोक जीवन में व्याप्त होता था। आधुनिकता ने लोक को पढ़ने–लिखने की चीज बना दिया है। इस कविता में लोक संवेदना को बहुत ही गहराई से दिखाया गया है। लोक तत्त्व के संरक्षण में एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी से कैसे समृद्ध है उसकी भाषा–शैली, रहन–सहन, आचार–विचार ग्रामीण/गवईं जन जीवन से ओत–प्रोत है।

"मैं पढ़ने के कमरे में
पुरानी डायरियों–किताबों में ढूँढता
जैसे कब्र खोद रहा होऊँ अपनी
कुछ भी हाथ नहीं आता"[5]

भारतीय लोक जीवन में गाय का होना समृद्धि, सम्मान, उर्वरता, मातृत्व और आत्मनिर्भरता को दर्शाती है। ग्रामीण जीवन में गाय प्रतिष्ठा और सामाजिक सम्मान का परिचायक होती है।भारतीय लोक जीवन की यह विडंबना है कि यदि गाय बूढ़ी हो जाए, दूध देना बंद कर दें या बांझ हो जाए तो लोक समाज उसका तिरस्कार करता है। उसे उपेक्षित, बोझ और अवांछनीय मानने लगता है। मानव कितना मतलबी, निर्दयी और क्रूर हो गया है यह स्पष्ट दिखाई देता है। लोक जीवन में उपयोग ही मूल्य का अवलंब बन जाता है। यह कविता समाज की उपयोगितावादी दृष्टि को दिखाती है कि कैसे गाय जब तक उपयोगी है तब तक पूजनीय है।

"सीधी हो, साधू हो खूब
रतिस्विनी खूब
पीनस्तनी खूब
पयस्विनी खूब
पूतस्विनी खूब
प्रजननस्विनी खूब !
अन्यथा ठहरी
तो ऊब ही ऊब!"[6]

यहाँ मनुष्य की तुलना पत्थर, लकड़ी और खड़िया से किया गया है अब गाँव का भी आदमी कैसे पत्थर, लकड़ी और खड़िया कीतरहसंवेदनहीन हो गया है उसकी संवेदनाए मर गयी है। गांवों का शहर की ओर पलायन हो जाने का अर्थ लोक संस्कृति, लोक–परंपराओं का विस्थापन होना है। सड़क आधुनिकता और विकास का प्रतीक है। सड़क उस समय गांव पहुंची है जब गांव उजड़ चुका था। अब गांव पहले वाला गांव नहीं है वहां वैमनस्य, दुराचार, एकाकीपन का आधिपत्य हो गया है। लोक की आत्मा अब मर चुकी है अब गांवों में केवल निर्जीव अवशेष बचे हैं।यह सांस्कृतिक विस्थापन है जहां शरीर बचा है, लेकिन आत्मा चली गई है। विस्थापन, संवेदना, संस्कृति का क्षरण।

"सड़क !
अब पहुँची हो तुम गाँव
जब पूरा गाँव शहर जा चुका है
सड़क मुस्कराई
सचमुच कितने भोले हो भाई
पत्थर–लकड़ी और खड़िया तो बची है न!"[7]

नागार्जुन की कविता में अन्न के अकाल का दुःख दिखाई देता है, वहीं केशव तिवारी जी की इस कविता में परती और पानी का दुख दिखाई देता है। हर सदी की अपनी–अपनी समस्याएँ हैं जो प्रत्येक कवि की अपने समय की कविताओं में दिखाई देता है। यह कविता कृषि प्रधान ग्रामीण समाज की पीड़ा को दर्शाती है। ध्रती, परती, मिट्टी और पानी यह लोक जीवन के मूल आधार है। भारतीय किसान मुख्य रूप से इन्हीं चीजों पर निर्भर रहता है। इक्कीसवीं सदी में कृषि से ज्यादा औधोगिकरण को बढ़ावा दिया जा रहा है। भारतीय लोक संस्कृति में धरती को माँ कहा गया है और बंजर जमीन को परती रानीद्य बंजर जमीन कभी चूनर धानी ओढ़े रहती थी, अब सुनी है यानी निसंतान है। पानी नहीं होने से भूमि बंजर होती जा रही है, मिट्टी की उर्वरा शक्ति नष्ट होती जा रही है। यह कविता प्राकृतिक संकट, जलवायु परिवर्तन आदि को अभिव्यक्त करती है।

"धरती का दुख है यह
परती का दुख
मिट्टी का दुख है
पानी का दुख"[8]

अनामिका की एक कविता में सोनपुर पशु मेला का संदर्भ लिया गया है। पूरी कविता में लोक जीवन में प्रयुक्त लोक–तत्वों का प्रयोग हुआ है जैसे– "का हो", "गोदाई", "लुगाई", "झट से" । इसमें लोक की भाषा, लोक की सोच, और लोक की आत्मा

मौजूद है। इसमें भारतीय ग्रामीण समाज के रंग, बोलियां, रिश्ते और पहचान की झलक मिलती है जो लोक–तत्वों के मूल आधार है। मेला लोक जीवन के मेल मिलाप सांस्कृतिक आदान–प्रदान का भी अवसर प्राप्त करता है। 'का हो, गोदना गोदाई' में सहजता, कोमलता और अपनापन झलकता है। टैटू सिर्फ सौंदर्य का साधन नहीं है बल्कि प्रेम की निशानी, जीवनसाथी की स्मृति, पहचान और संबंधों के अभिव्यक्ति का भी साधन है। पहले स्त्रीयां अपने पति के नाम की गोदना गोदवाती थी। उनका ऐसा मानना था कि पति का नाम लेने से उनकी आयु घटने लगती है इसलिए वह उनका नाम नहीं लेती थी। 'हो किसकी लुगाई' यह लोक जीवन में पति–पत्नी के अटूट संबंध को दिखाता है तथा साथ ही साथ स्त्री की पहचान को उसके पति से जोड़ता है। लोग समाज में स्त्रियाँ भले हीं अधिक मुखर ना रही हो पर उसकी चुप्पी भी अर्थपूर्ण और प्रभावी होती थी। इस कविता में लोक मनोविज्ञान की झलक दिखाई देती है। मेले और गोदना जैसे प्रतीक लोक जीवन की आत्मा है जो हमें हमारी जड़ों से जोड़ते है। गोदना हमारे लोक जीवन का "लोक पहचान पत्र" बन जाता था।

"शुरू हो गया होगा सोनपुर में
कातिक का मेला।
'का हो, का गोदना गोदाई'
पूछ रहे होंगे
मेलाघुमनियों से उनके
साईं।"[9]

मनोज कुमार झा ने एक कविता में लोक जीवन के क्षरण का वर्णन किया गया है। आधुनिकता, औद्योगिकरण, वैश्वीकरण, बाजारवाद, भूमंडलीकरण व सामाजिक असमानताओं ने लोक संस्कृति की जड़े हिला दी है, जो लोक–संस्कृति की आत्मा थींकृ जैसे कन्द–मूल का ज्ञान, स्त्रियों द्वारा सुनाई जाने वाली कथाएँ, जोगियों की सारंगियाँ, मँगतों के भिक्षापात्र, मटके का पानी, चिता की आग और लोकगीतों के भाव। ये सब या तो लुप्त हो रहे हैं या छीन लिए गए हैं। कविता यह चेतावनी दे रही है कि लोक जीवन के यह मूल तत्व खोते रहें तो समाज अपनी सांस्कृतिक पहचान और सामूहिक स्मृति से कट जाएगा। इस कविता में लोक की जड़ों को बचाने की पुकार है ताकि आने वाली पीढ़ियां सिर्फ किताबों में नहीं बल्कि धरातल पर लोक की जीवंतता को महसूस कर सकें।

"बिला गये वे सारे कन्द–मूल
जिन्हें मुसहर ब्राह्मणों से बेहतर जानते थे।
लुप्त हो गयी कथाएँ
जो स्त्रियाँ पुरुषों को सुनाती थीं।"[10]

राकेश रंजन की एक कविता ग्रामीण जीवन का जीवंत चित्रण करती है, जिसमें लोकजीवन की सादगी, परिश्रम और कठिन परिस्थितियों में भी आत्मनिर्भरता की झलक मिलती है। "श्रम सिक्ता, मृत्तिका–मंडिताष्कृ यहाँ स्त्री की मेहनत से भीगे हुए हाथों और मिट्टी से सने शरीर का चित्रण किया गया है। यह एक गाँव की स्त्री की चित्रण है जो दिन भर घर–आँगन और पशुओं के लिए काम करती है। "गोबर–हस्ता"— उसके हाथ गोबर से सने हुए हैं क्योंकि वह कंडे के माध्यम से उपले पाथ रही है। यह पीढ़ियों से चली आ रही पारंपरिक ग्रामीण ऊर्जा–स्रोत के उत्पादन की प्रक्रिया है। विपद्–खंडिताकृ यह पंक्ति दिखाती है कि वह स्त्री मुश्किलों और कमियों के बावजूद अपने काम में लगी रहती है। "दीन–हीन दारुण द्वारों पर / जीर्ण–पुरातन दीवारों परष्कृ यह गरीबी और समय की मार झेल रहे ग्रामीण घरों की जर्जर, परंपरागत संरचना को दिखाता है, लेकिन उनमें जीवन की गूँज बाकी है। "कंडे मातरम!" यह दृश्य न केवल घरेलू ईंधन बनाने का है; बल्कि "कंडे मातरम" कहना ग्रामीण जीवन में देशसेवा और मातृभूमि की सेवा का प्रतीक है।

"श्रम–सिक्ता, मृत्तिका–मंडिता
गोबर–हस्ता, विपद्–खंडिता
दीन–हीन–दारुण द्वारों पर
जीर्ण–पुरातन दीवारों पर
पाथ रही है
कंडे मातरम!"[11]

निष्कर्ष: इस प्रकार हम कह सकते हैं कि समकालीन कविता में लोक–तत्व की उपस्थिति हमें लोक से जोड़कर रखती है तथा लोक में उपस्थित तत्वों से हमारा साक्षात्कार कराती है। यह हमें लोक से जुड़े रहने की प्रेरणा देती है साथ ही लोक के प्रति आत्मीयता, जिम्मेवारी और उत्तरदायित्व को जगाती है। समकालीन कविता में लोक–तत्व की उपस्थिति यह दर्शाती है कि आज का कवि केवल शहरी बौद्धिकता या व्यक्तिगत अनुभूतियों तक सीमित नहीं है बल्कि वह अपने समाज, परंपरा और सांस्कृतिक जड़ों से भी गहराई से जुड़ा हुआ है। समकालीन कविताओं में लोक जीवन की संवेदनाएँ, प्रतीक, भाषिक रूप, संघर्ष और जीवन–दृष्टि नए अर्थों और संदर्भों के साथ उभरती हैं। यह उपस्थिति न केवल कविता को व्यापक बनाती है, बल्कि पाठक वर्ग के भीतर अपने समाज और संस्कृति के प्रति आत्मीयता, लगाव, जुड़ाव और उत्तरदायित्व को भी जगाती है। समकालीन कविता आधुनिक जीवन की विसंगतियों, विघटन और तेज़ी से होते सामाजिक बदलावों के बीच लोक के मूल्यों की प्रासंगिकता को भी रेखांकित करती है। जहाँ एक ओर औद्योगीकरण, नगरीकरण और भूमंडलीकरण के कारण लोक जीवन हाशिए पर पहुँच रहा है, वहीं समकालीन कवि अपनी रचनाओं के माध्यम से लोक संस्कृति, बोली–बानी, रीति–रिवाज, जीवन–दर्शन और सामूहिक चेतना को पुनः सामने लाने का प्रयास करता है। समकालीन कविता में लोक–तत्व की उपस्थिति आधुनिकता और परंपरा के बीच एक संवाद की तरह है — जहाँ अतीत की स्मृतियाँ वर्तमान की चुनौतियों से टकराकर कविता को और अधिक अर्थपूर्ण, सामाजिक रूप से उत्तरदायी और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध बनाती हैं। समकालीन कवि लोक भाषा, लोक प्रतीकों, रीति–रिवाजों, लोकविश्वासों और परंपरागत संवेदनाओं को अपनी कविता में इस तरह पिरोते हैं कि कविता अधिक जीवंत, आत्मीय और जन–संवेदना से युक्त हो जाती है। अतः यह कहा जा सकता है कि समकालीन कविता में लोक–तत्व की उपस्थिति नयी कविता को जनसंवेदना, सामाजिक यथार्थ और सांस्कृतिक निरंतरता से जोड़ने का एक महत्वपूर्ण सेतु बन चुकी है।

संदर्भ

1. उप्रेतीडॉ कुन्दन लाल, लोक साहित्य के प्रतिमान,भारत प्रकाशन, अलीगढ़, तृतीय संस्करण, 2000,पृ–5
2. कमल अरुण, पुतली में संसार, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली, संस्करण, 2006, पृ–40
3. कमलअरूण, मैं वो शंख महाशंख, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, पहली आवृत्ति,2014,पृ–26
4. सिंह केदारनाथ, सृष्टि पर पहरा, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. ,नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति, 2022, पृ–99
5. देवतालेचन्द्रकान्त, उजाड़ में संग्रहालय, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, दूसरा संस्करण, 2021, पृ–88
6. शुक्लअष्टभुजा, इसी हवा में अपनी भी दो चार सांस है, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, पेपरबैक्स, पहला संस्करण, 2023, पृ–135

7. पुनेठा चंद्र महेश, अब पहुँची हो तुम, समय साक्ष्य, देहरादून, द्वितीय संस्करण, 2023, पृ–12
8. तिवारी केशव, नदी का मर्सिया तो पानी ही गाएगा, हिंद युग्म, नोएडा, पहला संस्करण, फ़रवरी, 2024, पृ–18
9. अनामिका, पानी को सब याद था, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली,पहला संस्करण, 2019, पृ–148
10. झामनोज कुमार, किस्सागो रो रहा है, सेतु प्रकाशन प्रा. लि. ,नोएडा, प्रथम संस्करण, 2023, पृ–116
11. रंजनराकेश, पाथ रही है कंडे मातरम, शीर्षक रचना, फेसबुक पर 29 मार्च, 2025 को प्रकाशित।